उमा राम सुभाव जेहि जाना

तत्सदात्मने नमः

सुरति जब भगवान में लग गई, तो वह हटे न–यह प्रयास होना चाहिए। लेकिन जब तक राम के सही स्वरूप की समझ नहीं बैठ जाती दिल–दिमाग में, राम का सही स्वरूप हमारी समझ में क्लियर नहीं हो जाता है, तब तक यह मन बेइमानी करता रहता है। जब राम का सही स्वरूप पकड़ में आ जाता है, तो फिर मन विषयों में नहीं जाता है। और जब तक हमारे पूर्व जन्मों के पाप नहीं कट जाते हैं, जो मन को दौड़ा रहे हैं, वह मसाला भरा हुआ है, जो इस विषैली बैट्री को चला रहा है, तब तक यह मन ईश्वरोन्मुख नहीं होता। और जिस समय ईश्वर के विचार, ईश्वर की पहचान, ईश्वर हर जगह कैसे है–यह स्वरूप, जब समझ में आ गया और पकड़ में आ गया सही, और उसे नट, वोल्टों से कसकर, सही बैठा लिये, तब फिर यह मन नहीं जा सकता। फिर यह मन, नहीं जा सकता। यह मन, वहीं भगवान में लगा रहता है। फिर उसे चांस नहीं मिलता इधर–उधर जाने के लिए। क्योंकि जब सर्वत्र देख लिया जाता है भगवान को, तो मन जहाँ भी जाएगा, भगवान वहीं खड़ा मिलेगा। अगर वह ध्यान से, भजन से हटा, बाहर हुआ, तो वहाँ इसमें, उसमें जिस विषय में जाएगा, वहाँ भगवान को ही देखेगा। तो फिर हार मानकर बैठ जायगा।

इसलिए हमें अपने आपका, इंलार्जमेंट कर लेना है–सर्वत्र बना लेना है। व्यापक बना लेना है। जब तक हम अपने को अलग–दूसरे को अलग, तीसरे को अलग देखते रहेंगे, तो फिर अनेकों में परस्पर संबंध बनेंगे। इसी का नाम माया है। और जब सब में एक को देखने लगे तो सम्बन्ध नहीं बनेंगे, तो माया मिट जायेगी। अभी तक हम इन्हें अलग–अलग बर्फ के ढेलों के रूप में देखते थे। अब ज्ञान की गर्मी से, ये सब पिघलकर एक परमात्मा रूपी पानी बन गए हैं। अब परमात्मा रूपी पानी के अलावा कुछ है ही नहीं। जब ऐसी धारणा बन गई, तो अब मन के लिए जगह नहीं रह गई। मैदान, जहाँ वह दौड़ रहा था, रह ही नहीं गया। अब परमात्मा में रहेगा। अगर किसी को समुद्र में ले जाकर छोड़ दिया जाय, तो फिर वह कहाँ जाएगा? जिधर जाएगा, समुद्र में रहेगा। पानी ही पानी में तैरेगा। पानी के अलावा और है क्या वहाँ?

ऐसी समझ जब तक नहीं आ जाती, कि परमात्मा का ऐसा रूप है, ऐसा, खाका है, ऐसे वह काम करता है। वही कारण बनकर, कार्य को धारण किए हुए है। वही

कार्य बनकर कारण को धारण किए हुए है। ऐसे अन्योन्याश्रय संबंध है इनमें। वह 9वीं क्लास की बातें हैं फिर दसवीं, बारहवीं की बातें हैं। ऐसे बढ़ते-बढ़ते चार छः सब्जेक्ट पढ़ने-पड़ते हैं-12वीं तक। शुरू में कई विषय पढ़ने पड़ते हैं। फिर बी.ए. में दो या तीन विषय रह जाते हैं। फिर एम.ए. में एक सब्जेक्ट रह जाता है। पी.एच.डी. में खाली एक टापिक पर थीसिस लिखी जाती है। इस तरह से सारी पढ़ाई पूरी होती है। साधना भी एक पढ़ाई है। इसका भी कोर्स पूरा करें, तो परमात्मा की समझ आ जाती है। तो फिर कितने बन्दर हैं अंगद, हनुमान, सुग्रीव, नील-नल-इनके कथानक बने हैं। यह सब यहाँ-वहाँ, प्रसंगों के रूप में भरे हैं टुकड़े-टुकड़े करके। ये सब बड़े-बड़े महात्माओं की साधना के अनुभव के आधार पर नाटकीय ढंग से बनाए गए हैं-समय समय पर।

अब जैसे शंकर जी हैं-हम बताया करते हैं कि शरीर अनुगत चेतन का प्रतिबिम्ब शंकर का है। यह शरीर का देवता है, इसका मालिक है। इसी प्रकार दक्ष को भी शरीर में चेतन का प्रतिबिम्ब माना गया है। इंद्रियों के भी देवता हैं इसी में। और भी देवी-देवताओं के कोश बने हैं।

इन्द्रिय द्वार झरोखा नाना। तहं तहं सुर बैठे करि थाना।।

इसमें वरुण, कुबेर, अश्वनीकुमार, इंद्र, यमराज और चन्द्र, सूर्य आदि-आदि देवताओं का निवास बताया गया है। इसी शरीर के अन्दर सब हैं।

हनुमान जी के जन्म की कहानी बनी है कि हनुमान की माता अंजनी ने बड़ी तपस्या की थी। जंगल में जाकर एक झोपड़ी चारों तरफ से बंद करके-एक छेद छोटा सा बना लिया, हवा आने के लिए। और उसी में भजन करने लगी। एक दिन उधर से शंकर जी निकले। कुछ गुनगुन सी आवाज सुनाई पड़ी। तो बोले कौन हो तुम। उसने कहा मैं अंजनी हूँ। यहाँ तपस्या कर रही हूँ। तो बोले कुछ मंत्र लिए हो कि ऐसे ही। अंजनी बोली मंत्र नहीं लिया। बोले, अच्छा लाओ कान, छेद के पास लाओ तुम्हें मंत्र देंगे। तो अंजनी ने एक बांस की पोली छेद में करके कान में लगाई। तो पंडित लोग कथा में बताते हैं, कि शंकर जी ने उसमें वीर्य डाला, जो कान के रास्ते अंजनी के गर्भ में चला गया और इस प्रकार हनुमान जी पैदा हुए। तो यहाँ अनुराग की प्रशक्ति के रूप में अंजनी है। हृदय में ईश्वर के प्रति छोटी सी प्रेम की भावना से ही समय आने पर उसका बड़ा रूप वैराग्य रूपी हनुमान पैदा हो जाता है। जब वैराग्य पैदा हो गया। तो फिर कहते हैं हनुमान जी ने सूर्य को निगल लिया था। तो यह श्वासा ही सूर्य है। वैराग्य भाव साधक में आ गया तो श्वांसा में जप करके उसे

खड़ी कर लिया, उस पर नियंत्रण कर लिया–यही सूर्य का निगलना है। फिर सारे देवताओं का आशीर्वाद मिल जाता है।

भगवान के अवतार की कथा कही जाती है, कि पृथ्वी पर जब बहुत पाप बढ़ गया, तो वह अकुला उठी, और गाय का रूप बनाकर देवताओं के साथ ब्रह्मा के पास गई। शंकर जी को लिया। सबने प्रार्थना किया तो भगवान प्रगट हुए। उनसे बताया इन लोगों ने कि इस पृथ्वी रूपी शरीर में, जो गो नाम इंद्रियों से बना है–इसमें दानवों का अत्याचार बढ़ गया है–विकार ही विकार भर गए हैं। देवता सब अरेस्ट हो गए हैं। स्वर्ग तक इन दानवों का अधिकार हो गया है। पाप का भार अब सहन नहीं हो पा रहा है। अब भगवान रक्षा करो। तो भगवान अवतार लेकर पृथ्वी का भार दूर करने का आश्वासन देकर चले गए। तब ब्रह्मा ने सब देवताओं से कहा कि–

'बानर तन धरि धरि महि हरि पद सेवहु जाइ।'

इस तरह इसमें बड़ी भारी गणित लगाई गई है। यह गणित ही साधना है। इसी को सब वेद, पुराणों, कथाओं में समझाया गया है। इसी गणित को समझ लेने पर भगवान समझ में आ जाता है।

अब हनुमान को पवन–पुत्र भी कहते हैं और केशरी तथा शंकर जी के भी पुत्र हैं हनुमान। तो अब देखो हनुमान में कितनी क्षमता आ गई। शंकर की, पवन की, केशरी की और उधर सारे देवताओं की भी क्षमता उनके वरदानों के रूप में आ गई। इस तरह सारी क्षमता आ गई। लेकिन सबसे पीछे फिर एक कोई देवी ने आकर वर दिया, कि तुम्हें अपनी ताकत की याद न रहेगी।

तो यह सब बातें जो इन कथा प्रसंगों में बताई गई हैं, वे सब हमारे अंदर आती हैं। हमारा मन जब बुराइयों से ओत–प्रोत हो जाता है। विकारों से भर जाता है, तो फिर अकुला उठता है, कि शांति मिले–किसी तरह से। तब फिर उपाय निकलता है। देवताओं के अंश के रूप में, ये तमाम ब्रह्मज्ञान रूपी बन्दर–भालू, जामवन्त, अंगद, हनुमान, सुग्रीव सब आ जाते हैं–इसी शरीर रूपी धरा–धाम में। और फिर धीरे–धीरे भगवान भी आ जाते हैं। तो–

उमा राम स्वभाव जेहि जाना। ताहि भजन तजि भाव न आना।।

इस तरह से जब भगवान की जानकारी हो जाती है, तब फिर भजन अनवरत होने लगता है। लेकिन इसके लिए हमें यह जो माया उन्मुख स्वभाव है, रहनी है, इसे ईश्वर उन्मुख करना पड़ता है। तो कैसे राम उन्मुख स्वभाव बन जाय? ईश्वर उन्मुख रहनी कैसे मिले हमें, महात्माओं की बताई हुई। समझ में तो आ जाती है।

लेकिन स्वभाव में कैसे ढले? ईश्वर को हम जान जाएंगे, लेकिन उसमें रहनी कैसे मिले? वह अगर मिल जाय, तो दुनिया आकर्षित होकर टूट पड़ती है, अगर क्षमता आ जाय। जैसे यह गहरा गड्ढा है, तो चारों तरफ से पानी इसमें चला आयेगा। तो इस तरह से क्षमता आनी चाहिए। हमारी क्षमता रूपी सीता को मोह ने हर लिया है। तो उसे फिर से पाना है। पता लगाना पडेगा कि कहां है कैसे मिलेगी।

किष्किंधा कहते हैं कमर को। कमर कहते हैं आधार को, आधार कहते हैं शरीर को। तो इस काया रूपी किष्किंधा से टोह लेने के लिए बंदरों को भेजा गया। कि पता लगाना है–हमारी शक्ति को कौन चुरा ले गया है? कहाँ वह रहता है? उसकी कैसी ताकत है? कैसा क्या है–यह पता लगाना पड़ता है। यह सब पता लगाने के लिए हनुमान को भेजा जाता है। और चोरी–चोरी, हम भजन–ध्यान करते हैं। इस तरह टोह मिलने लगती है। धीरे–धीरे सब पता चल जाता है। पहले स्थूल शरीर के स्तर की साधना है। जब उसमें प्रवेश करता है, तो सुरसा मिल जाती है। यह माया की तरफ से वहाँ पहरेदार है। फिर उससे आगे जब सूक्ष्म शरीर की साधना में प्रवेश करता है, तो वहाँ सिंहिका मिल जाती है। माया की उस रक्षापंक्ति को तोड़कर कारण शरीर में प्रवेश करता है, वहॉ लंकिनी है–उसे भी मार देता है। तब फिर भेंट हो जाती है आत्मा से–विभीषण से। जीवात्मा रूपी विभीषण राम का ही रूप है। क्षेपक कथाओं में इनका बड़ा विस्तार है। जीवात्मा और परमात्मा एक ही हैं। जो सबके शरीरों में जीवात्मा रूप से, ईश्वर निवास करता है वह है विभीषण। और विष्णु उस साधक की आत्मा है, जिसके ध्यान, भजन से कुंडलिनी जाग्रत हो जाय। परा में पहुंच जाय, रिद्धि–सिद्धि आ जाय, व्यापकता आ जाय। उस स्तर की अवस्था वाली आत्मा को, विष्णु कहते हैं। और राम परात्पर ब्रह्म–जो सर्वत्र एक रस व्यापक, जो अनादिकाल से है, वह परमतत्व है राम। यह सुप्रीम डिग्री है। इसे कोई कोई पाता है। जो माया को लिए हुए भी, माया से अलग है। जो भलाई–बुराई दोनों को लिए हुए भी, इनसे ऊपर है। ऐसा परमात्मा है राम।

पद पाताल सीस अज धामा।

अपर लोक अंग–अंग विश्रामा।।

परमात्मा और उसकी माया सर्वत्र है। अब किसी के यहाँ (अंतःकरण में) रावण प्रबल हो गया है। किसी के पास राम का पक्ष सबल है। तो इस तरह दानव और देव, कौरव और पांडव, सजातीय और विजातीय, अच्छाई और बुराई, हंसाई और रुलाई, पैदाइश और मरण ये सब इन्हीं के नाम है। जब समझ आ जाती है, तो

स्पीड आ जाती है, बताने में। और जो नहीं समझते, उन्हें दिक्कत आती है। बता नहीं पाते हैं।

तो जब साधक में साधना करने की तैयारी बन गयी। वैराग्य के जरिये टोह मिल गई और ध्यान के द्वारा जो समझ आ गई, अब उसी में अभ्यास शुरू कर दिया। कार्य में परिणत करना है, इसी शरीर के द्वारा। तो इस तरह से ज्ञान-ध्यान की साधना के लिए, स्पीड होनी चाहिए। तीव्र वेग चाहिए। और जो स्पीड नहीं ला पाते, उनके लिए, गुरु लोग बता देते हैं, शरीर स्तर पर सेवा। जो शरीर के द्वारा हेय धर्म होते रहे हैं, इन्हीं के परिणाम से, हमें यह कंडीशन मिली है। यह तो प्रत्यक्ष ही है। तो शरीर से किए गए पाप, शरीर के द्वारा सेवा करने से ही निवृत्त होंगे। और मन के द्वारा विषयों का चिंतन करते-करते जो विकार भर गए हैं मन में, उनके शमन के लिए भजन का विधान किया गया है। तो बस मन से भजन करना है, और शरीर से सेवा करना है। ये भजन और सेवा दोनों, एक दूसरे को मदद करने लगेंगे, तो साधक में सुधार आ जायगा। इसलिए सबसे बड़ी चीज़ है, कि साधना को नहीं छोड़ना है।

अब यह तो है, थ्योरिटिकल बातचीत। और जो हम ध्यान करते हैं, नाम जपते हैं, सेवा करते हैं। यह साधना है-प्रैक्टिकल है। इसी शरीर के लिए हम साधना करते हैं, इसी में हृदय के अंदर भगवान पैदा होते हैं। यही अवध है।

जन्मभूमि मम पुरी सुहावनि। उत्तर दिशि सरजू बह पावनि।।

उत्तर,ऊपर अन्दर। यह श्वासा ही सरजू है। यह निरंतर प्रवाहित हो रही है। इसमें खूब नाम जपें। ऊपर जाती है तो रा, नीचे जाती है तो म। इसी में मन को लगा दें। तो फिर-

जा मज्जन ते बिनहिं प्रयासा।
मम समीप नर पावहिं वासा।।

जब श्वांस जप की सरजू-धारा में इस मन की सफाई हो जाएगी, तो भगवान के समीप पहुँचा जा सकता है। और कोई उपाय थोड़े ही है। और नहीं तो लम्बी कहानी छोड़ो, थोड़े में खतम कर दो। तमाम महात्मा साधना की पूरी बात ऐसे भी कह देते हैं। ऐसे ही किसी ने भजन बनाया है-

ससुरे से गौना उलटि चला नैहरवा।
बिना मात की लड़की जायी, तरकी पहिने हरवा।

बेसर पहिने मांग संवारे कंघी लीन्हे करवा।

निज लड़के को खसम बनाया छः धूनी का मड़वा।

प्यारी सखी सोहागन गावैं परिगे चकर भंवरवा।

सत्रह पांच पचीस सजा कै, सजगे चार कहरवा।

डोली-डोली फिरै भंवर में तीन धार का नरवा।

आठ चार के बीच घुमा के लइगे ससुर दुवरवा।

कह पुरुषोत्म पिया पायकै सोवै लागी कोरवा।

भगवान में लव लग जाय यही बिना माता की लड़की है। मन को सुधार ले यही मांग संवारना है। अच्छे-अच्छे कार्यों को हाथ में ले लें बुरे कर्मों का परित्याग कर दें। अपने लक्ष्य का ही-इष्ट का ही वरण करें, उसी को हृदय में पकड़ लें। यही अपने लड़के को पति बनाना है। काम क्रोध लोभ मोह मद मत्सर इन षट्विकारों को इनके विरोधी छः सद्गुणों से काटना, यही छै थूनी का मड़वा है। संसार ही ससुराल है, निवृत्ति पद या त्रिगुणातीत निर्गुण अवस्था (आत्मपद) ही नैहर है। संसार रूपी ससुराल से लौटकर आत्मपद रूपी नैहर में जाना है। अष्टधा मूल प्रकृति और मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार त्याग करके, सत्य स्वरूप परमात्मा के द्वार पर पहुँच गई। और अपने स्वरूप में स्थित होकर शांत हो गई। तो इस तरह से एक ही पद में सब, वेद-शास्त्र की बात आ गयी। तो जो जानकार होते हैं, वे आलराउंडर होते हैं। उनको महावड़ा हो जाता है। अब दसवीं क्लास का लड़का बी.ए. की क्लास में बैठ जाय, तो प्रोफेसर की बात क्या समझेगा?

तो इस शैली से जब सही आइडिया मिल गया, कि यह लक्ष्य है। यहाँ-यहाँ, ऐसे-ऐसे जाना है। तो अब प्रैक्टिकल साधना शुरू हो गई। चारों तरफ बंदर ही बंदर। ब्रह्मज्ञान ही ब्रह्मज्ञान, मन-मस्तिस्क में भर गया है। हर तरफ ईश्वर मय विचार छा गए।

सियाराम मय सब जग जानी।

और पहले क्या था-

गो गोचर जहं लगि मन जाई। सो सब माया जानेहु भाई।।

अब वह माया रह नहीं गई। सही लक्ष्य मिल गया, सही साधन होने लगा। अब राइज हो गया साधक।

तो गोस्वामी जी ने एक ऐसा उपाय–यह मानस–रच कर तैयार कर दिया है, कि हर आदमी के अंतःकरण की यह कहानी है। एक कायदा है। एक नज़ीर है, एक डाकूमेन्ट (दस्तावेज) है, हमारे अन्तःकरण का। हर एक के अंदर लालसा है, कि हमको शान्ति मिले। हमें संतोष मिले, हमें जीवन का लाभ मिले, हमें ईश्वर की प्राप्ति हो। अब उससे छुटकारा नहीं मिलता, जहां फंस गए हैं–इस दुनिया में। संसार रूपी बर्फ है, परमात्मा रूपी पानी है। संसार यह आकार बन गया है, उसी पानी रूप परमात्मा का। यह हमारे इस काम आता है, यह खाने के काम आता है–इस प्रकार संसार के इन रंग, रूप, आकारोंमें फंस कर रह गया है, आदमी। इसमें ढल चुके हैं, हम। यह धारणा दृढ़ हो गई है। यह कन्टीन्यू हो गई है, मान्यता। मानते चले जा रहे हैं, कि यह ऐसा ही है। इसे हमें खाना होता है। इसे हमें पहनना होता है, इत्यादि इत्यादि। परस्पर के संबंध व्यवहार, रीति–नीति, शरीर की क्रियाएं, पदार्थ सब हमें ज़रूरी नहीं गैर ज़रूरी हैं। जब प्रकृति हमें उठाना चाहती है, तो खाने की इच्छा नहीं रह जाती, कपड़े की ज़रूरत नहीं रह जाती, पैसा–धन दौलत सब पड़ा रह जाता है। कौन ऐसी ताकत है, जो अनिर्वचनीय, अपने को कहती है, कि मैं सर्वत्र हूँ एकरस हूँ, व्यापक हूँ, शुद्ध हूँ, बुद्ध हूँ, अजन्मा हूँ। अविनाशी हूँ। और मेरे ही होने से सब कुछ हो रहा है। जो सबका कारण बना हुआ है। लेकिन देखते हैं, कि कार्य भी कारण का काम कर रहा है, और यह समझ में नहीं आ रहा है।

गोस्वामी जी के दिल दिमाग में यह बात आई। वह बहुत बड़े विद्वान थे। बहुत बड़े रिसर्च कर्ता, बहुत उच्च कोटि के मननकर्ता थे। तो उनकी समझ में इस संसार की अलौकिकता जैसे आई है, उसे सबके सामने रख दिया है–मानस के रूप में। कि भाई, मेरी इस इमेंसिपेशन (अन्तर्युक्ति) को, अगर समझ में आ जाय, तो कार्य में ले लेना। इस आशय से तो कहा जा सकता है कि लोक कल्याण के लिए उन्होंने इस रामायण की रचना की है कि लोग पढ़ेगें–सुनेंगे, और मेरी जैसी समझ उनमें भी आ जायेगी। यह समझ में आ जायगा, कि यह संसार बर्फ है, और ईश्वर पानी है। ज्ञान रूपी गर्मी दे देंगे, तो यह संसार रूपी बर्फ पिघलकर परमात्मा रूपी पानी बन जायगा, और अगर इच्छा रूपी ठंडी देंगे, तो परमात्मा रूपी पानी–संसार रूपी बर्फ बन जाएगा। और असली चीज़, नकली बनकर तैयार हो जायेगी, और इस मृगतृष्णा में हमारी प्यास जग जाएगी, तो फिर इससे कभी पिंड छूटेगा नहीं। तो यह जनरल एक बात है, जनरल एक कथन है।

तो भाई हमारे तुम्हारे सबके अन्दर जो आसक्ति है, वही लंका है। बिना बुलाए इसमें मोह रूपी रावण आकर बैठ जाता है। फिर उसकी मदद के लिए क्रोध रूपी

कुंभकरण बन जाता है, काम रूपी मेघनाद तैयार हो जाता है। इच्छा रूपी अक्षय कुमार पैदा हो जाता है। इस तरह से ये सब दुष्ट तैयार हो जाते हैं। और ये सब हमें अपने साथ ले जा रहे हैं। जो ज्ञान, वैराग्य, विवेक है, उनका साथ हमारा छूट रहा है। ये सब निराकार हैं, दुर्गुण और सद्गुण। तो निराकार की पलटन जल्दी समझ में नहीं आती और साकार की पलटन, जल्दी समझ में आ जाती है। और इसमें निपुण हो जाते हैं। तो गोस्वामी जी ने कहा कि हमने जो समझा है, अपने ढंग से, यह उपाय हम आपके लिए छोड़े जा रहे हैं। तो उन्होंने हम लोगों के लिए जो उनके अनुयायी हैं, उनके पीछे जो हम सब चलने वाले हैं, हम सबके लिए बड़ी भारी दया करके, यह उपाय बता दिया है। अब हम लोगों का कर्तव्य है कि हम उनके बताए हुए उपाय को अपने ऊपर लागू करें। इस समझ को अपने में एडजस्ट करें। इस नज़ीर को अपने जीवन में उतारें। अब कैसे उतारें, यही चतुराई की बात है। यही है साधना, यही बदलाव, यही है भजन, यही है ईश्वर की प्राप्ति का उपाय। उसे हम करें।

जब हम भगवान की ओर चल पड़ते हैं तो ये अन्दर के विकार छीजने लगते हैं। देखो जब विभीषण चला राम के पास तो

अस कहि चला विभीषण जबहीं। आयूहीन भये सब तबहीं।।

तो सब राक्षस आयुहीन हो गये। मर ही गये मानो। ऐसा ही है। चलकर तो देखो। इन्हें तो मरना ही है। मरे ही हैं। तो जब यह जीवात्मा उधर मिल गया तो सब काम बन गया। वही सब बतायेगा। संसार समुद्र को पार करने का तरीका मिल गया। जब शंकर की स्थापना हो गयी, इष्ट को हृदय में बैठा लिया तो संयम रूपी सेतु बन गया। फिर पहुंच गये सुवेल पर्वत पर। शुभ की लेवलिंग हो गयी। अब अंगद का काम आ गया।

तो अंगद कहते हैं, अनुराग को। अनुराग की परिसीमा, एक बार और रावण को मोह को हिला दे। कैसा सुन्दर अन्तर्जगत का कम्पोजीशन किया है, तुलसी दास ने। रोज सुबह शाम भगवान के सामने करुणा करो, रोओ, गाओ। कि मैं दरिद्र हूँ। क्या आप मुझे अपनी शरण में नहीं ले सकते? मैं एक बूंद हूँ, आप समुद्र हैं। मुझ पर दया की जाय। ऐसा अनुराग ही अंगद है। अंगद को भेजने का मतलब है, साधक को अनुराग होना चाहिये। जब रोज ऐसा अनुराग लाएंगे, तो फिर मोह की, काम की, क्रोध की, बदमाशी की जड़ उखड़ जाएगी। ये सब जर्जर हो जाएंगे। अब यहाँ से हमारी तरफ से खुराक पा नहीं रहे। साधक की जो इनर्जी है, वह अनुराग के द्वारा,

वैराग के द्वारा, भगवान में लग गयी है। तो ये सब, काम, क्रोध खुराक पा नहीं रहे हैं। उनका जो वेग हमें आ जाता था, रुकेगा। काम मेघनाद का वेग आ जाता था। क्रोध कुम्भकर्ण का वेग आ जाता था। मोह का वेग आता था। वह अब ढीले पड़ जाएंगे। तो ऐसी युक्ति से गोस्वामी जी ने यह रचना की है।

अंगद जब गया तो दरवार में जाने के पहले रावण के एक लडके को मार डाला था। तो वहाँ कोई लड़का-फड़का तो है नहीं। लड़का तो है लगन। जो माया मोह की लगन है मन में। इसलिये बाहर की बातों की तो कोई वैल्यू यहाँ रहती नहीं। बाहर किसी का लड़का मरता है, तो रोवाई मच जाती है। तो जब हम माया-मोह में रहते हैं, तो तमाम चीजों में जो हमारी लगन लगती रहती है, यही सब रावण की सैकड़ों संताने हैं। कभी स्वाद में लगन लगी, कभी रूप में लगी, कभी और कहीं लगी-यही सब उसके लड़के, पैदा होते जाते हैं। और इस तरह रावण का परिवार बहुत बड़ा था।

"इक लख पूत सवा लख नाती।
ता रावण घर दिया न बाती।"

ऐसे ही जब हमारी लगन भगवान में लग जाती है। तो देखो राम ने कितने बंदरों की सेना खड़ी कर दी। ये ब्रम्हज्ञान रुपी बंदर। पदुम अठारह पूथप बंदर। कोई भी जगह न रह जाय, जहाँ हमारी ब्रम्हमई दृष्टि न हो जाय। जब अनुराग को भेज दिया, तो वहाँ खलबली मचा दिया। जाकर पैर जमा दिया, और कहा कि लो उठाओ मेरा पैर। कोई नहीं उठा पाये। तो यह मोह अब जर्जर हो गया। ऐसी नीति से इसको अन्तःकरण में बैठाते जाओ, तो प्रैक्टिकल अर्थ आ जायेगा। और नहीं तो बाहर से लेने पर चक्कर में पड़ जाओगे। जैसे लिखा है कि,

देखन कहं प्रभु करुना कंदा।
प्रगट भए सब जल चर वृंदा।।
मकर नक्र नाना झख व्याला।
सत योजन तन परम विसाला।।

यहाँ सोचो कि जब सौ योजन का कुल समुद्र ही था, तो उसमें सौ-सौ योजन के अनेक जीव कहाँ से आ गये? क्या गोस्वामी जी को कविता लिखने में यह ध्यान नहीं देना चाहिये। कि इस पर लोग तर्क वितर्क करेंगे। समझ में नहीं आता कि यह बाहरी कविता हो सकती है, या नहीं। एक जगह कहते हैं-

शंकर प्रिय मम द्रोही शिव द्रोही ममदास।

ते नर करहिं कलप भरि, घोर नरक महंवास।।

तो फिर कोई इनकी भक्ति ही न करे। आज तो आदमी इस ढंग से विचार करता है। कोई शंकर की करता है, कोई गणेश की, कोई देवी की उपासना करता है। तो क्या इन देवताओं में, आपस में आदमियों जैसे विरोध भी रहता है? अरे भाई। किसी की भक्ति कर तो रहा है। एक तो आदमी ऐसे भी भक्ति नहीं कर पा रहा है। जो जहाँ कर रहा है, करने दो। कोई देवी की करता है, कोई गणेश की करता है, और किसी की करता है, तो इसमें हर्ज ही क्या है? भक्ति तो भक्ति। एक तो आदमी को वैसे भी माया के मारे टाइम नहीं हैं, भक्ति करने का। उस पर इस तरह के बैर विरोध, अगडपेंच भरे पड़े हैं। तो इसका मतलब तो यह हुआ कि किसी की भक्ति न करे, वह आधे नरक में पड़ेगा। क्योंकि जो राम की नहीं करेगा, शंकर की भक्ति करेगा, वह घोर नरक में पड़ेगा। ऐसा लिखा है। आज कल का आदमी, ऐसे तर्क वितर्क करता है। तो इसका क्या उत्तर है? आखिर उन देवी देवताओं को तो बोलना नहीं है। अपने में आदमी ऐसे तर्क करते करते अन्त में देवी-देवताओं से हट जाएगा। क्योंकि जब तर्क हुआ और उसका समाधान नहीं मिला, तो फिर आदमी के मन में और ज़्यादा शंका बनती है।

इसलिये मानस के ढंग से लेना पड़ेगा। शंकर यहाँ शरीर स्तर की साधना में, नियंत्रण करने वाला सत्य का रूप है। राम आत्मा के रूप में है। साधक शरीर स्तर की साधना करके आगे बढ़ता है, तभी राम को पा सकता है। और राम अगर नहीं मिलेगा, तो शरीर का उद्धार कैसे होगा? इसलिये, ये दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। या यों कहिए कि शंकर भगवान का रूप संत का रूप है, जो राम को अपने में धारण करता है। और राम उसी पर कृपा करता है, जो राम को भजता है। उसी का भक्त होता है। तो जो शरीरधारी राम हैं संत सदगुरु, जिन्होंने राम को आत्मसात किया है ऐसे आप्तमहापुरुष का नाम शंकर है और जो सब में व्यापक तत्व है, उसका नाम राम है। इसलिये इन दोनों में अभेद है। बिना शंकर के राम नहीं, और बगैर राम के शंकर नहीं। अन्तर्जगत में तो यह अर्थ आ जाता है। लेकिन बाहरी जगत में एक कहेगा हम राम उपासक हैं, दूसरा कहेगा हम शिव के हैं। तो फिर आदमी तर्क खड़ा कर देगा, कि रामायण में तो ऐसा लिखा है। तो ये जो सम्प्रदाय बढ़ते जा रहे हैं। यह जो अनेक ईश्वर वाद बढ़ते चले जा रहे हैं। भिन्न भिन्न प्रकार के सिद्धान्त अलग-अलग बनते जा रहे हैं। ये द्वैतवाद, अद्वैतवाद, द्वैताद्वैत, विशिष्टाद्वैत और कौन-कौन बाद, तो यह वाद विवाद तो बढ़ता ही जाएगा। जब तक सही सिद्धान्त, जो सबपर लागू होता है, ऐसा अन्तर्जगत का सिद्धान्त नहीं मिल जायगा।

इसमें एकता नहीं लायी जाएगी, तब तक एकात्मता कैसे हो सकती है ? क्या समझ संतुष्ट हो सकती है? कभी नहीं होसकती है। यह रामायण, गीता उपनिषद कुछ भी हो, तो यह अन्तःकरण का आधार तो हमें लाना ही पड़ेगा। सत्य का आधार तो हमें लाना ही पड़ेगा।

अब मान लो हमें जाना है, रीवा। तो यह जानकारी लेनी पड़ेगी, किसी से, कि कहाँ से कैसे जायं। तो वह बताएगा कि अमुक जगह से मोटर मिलेगी, फिर सेमरिया मिलेगा, फिर ऐसे ऐसे मिल जाएगा रीवा। बाहर को लेकर अन्तर्जगत में बैठालना पड़ता है। फिर चलना पडता है। तब पहुंचना होता है। तो इस तरह से इस जटिल संसार में, जो अन्योन्याश्रय दोष से युक्त है। सुख-दुख, हर्ष अमर्ष आदि द्वन्द्वों से भरा है, तो यह मन इसी में तैरता रहता है। इसलिये अगर ईश्वर को हम बाहर ले लेते हैं, तो काम नहीं चलेगा। ईश्वर ही संसार बन गया है, और संसार ही ईश्वर मय बन जाता है। लेकिन इसका भेद लगाना पड़ेगा। उदाहरण के लिये पानी ही सर्दी पाकर बर्फ बन जाता है। और बर्फ ही गर्मी पाकर पानी बन जाता है। लेकिन इन दोनों के रूप आकार गुण धर्म बदल गये हैं। इसलिये इसका बाहरी अर्थ लेने से, गड़बड़ी आती है। जैसे हम जहाँ पैदा होते हैं, उसी जात के माने जाते हैं। दूसरा दूसरे जात का माना जाता है। इसी तरह सभी का जाति धर्म, रीति, रिवाज, खानपान, रवैया ये सब अलग-अलग हो जाता है। बाहर दुनिया में, यह सब स्वाभाविक है। लेकिन ईश्वर में यह सब विभिन्नता ठीक नहीं बैठती। वह तो एकरस है। यह जो बर्फ बन गया है पानी, उसमें बडी भारी कला है। यह जो परमात्मा रूपी पानी ही, बर्फ रूपी दुनिया में बदल गया है। उसकी सफेदी, उसका रूप आकार, इसमें बड़ा भ्रम बन जाता है। उसे गलाकर पानी बनाएं, तभी पानी मिलेगा।

तो यह जो शंकर जी की स्थापना का प्रसंग है, यह साधना की पांचवी-छठी भूमिका के संदर्भ में है। यह संसार समुद्र है जिसमें विषय रूपी पानी है संकल्पों की लहरें उठ रही हैं। ऐसे मानना पड़ेगा। इसे पार करने के लिए एक आधार बनाना पड़ेगा। ध्यान करना पड़ेगा। संतसद्गुरु को हृदय में बैठाना पड़ेगा, जब वो शंकर मिल जायेंगे, तो फिर इसका इलाज मिलेगा। इसलिए राम ने पहले शंकर की स्थापना किया, तब पार गये। पहले हमने सोचा था कि साधनों से इसे पार कर लेंगे, तो हमारे विवेक रूपी लक्षण ने हमें टोंका था कि ऐसे यह मानने वाला नहीं। यह ऐसे वश में न होगा। हम अच्छाई को पकड़ेंगे। तो बुराई बन कर खड़ा हो जायेगा। और बुराई को पकड़ेंगे तो भलाई बन कर खड़ा हो जायेगा। यह अन्योन्याश्रय दोष से परिपूर्ण है संसार। कभी यह ईगो बन जाता है। सब रूप धारण

कर लेता है। बहुत खतरनाक है। यह सब एक दूसरे से मिले हुये हैं। एक धारणा साधक के हृदय में विवेक के द्वारा यह आती है। जीवात्मा रूपी विभीषण है। इसका रहस्य पूरा वहीं से (जीवात्मा द्वारा) खुलेगा। इस जीवात्मा विभीषण ने राम से कहा, कि यह समुद्र तुम्हारा कुल गुरु है। बहुत पहले से है। इसे मनाओ। अर्थात् शरीर से साधना करके, आगे बढ़ना चाहिए। किन्तु साधना करने पर भी, यह धोखा दे सकता है। हम चाहे कितना मेहनत करें, और यहां हमारी खबर न मिले। और यह संसार हमें न छोड़े। राम ने समुद्र की स्तुति की। किन्तु समुद्र रूपी असत्य संसार, उनकी स्तुति पर प्रसन्न नहीं हुआ। हर प्रकार से साधना किया किन्तु जब इससे सफलता नहीं मिली, समुद्र नहीं माना, तब राम ने कहा–लाओ अग्निवाण, मैं इस समुद्र को सुखा डालता हूँ।

यही तरीका है, जो तुलसीदास के हृदय में आया था। पहले विनय पत्रिका में गोस्वामी जी ने भगवानके समक्ष कितना अनुनय विनय किया। काम, क्रोध, लोभ, मोह से मुझे लुटवाओ नहीं। इनसे, हे भगवान! मेरा पीछा छुडाओ। दुष्टों की बंदना करते रहे। किन्तु कोई नहीं माना। तब वे ललकार कर खड़े हो गये, कि 'अब मैं तोहिं जान्यो संसार।' अरे! संसार अब तुम आसक्त नहीं कर सकते मुझे। इसी प्रकार साधक को भी ललकारना चाहिये। अब मुझ पर भगवान की कृपा हो गयी है। अब तुम मुझे नहीं बाँध सकते। इसी तरह से जब साधक में कुछ अनुराग वैराग्य, विवेक का बल आ जाता है, तब वह ललकार कर खड़ा हो जाता है। तब यह संसार समुद्र गिड़गिड़ाने लगा। काबू में आ गया।

तो साधना करो। मन से भजन करो ध्यान करो। शरीर से सेवा करो। चाहे तुम झाड़ू लगाओ, चाहे तुम भोजन बनाओ, चाहे तुम कोई कर्तव्य करो। सेवा कार्य इसलिए किए जाते हैं, कि जो शरीर से किए हुए पाप हैं, उनकी निवृत्ति, शरीर से की गई सेवा से होती है। और मन से किए हुए अनेक जन्म के जो पाप हैं–खराबियां हैं, उनकी निवृत्ति, मन के द्वारा होती है। हमारे पास दोनों हैं। शरीर भी है, मन भी है। शरीर से हम सेवा करें, और मन से भजन करें, तो एक दूसरे को हेल्प करेंगे। सेवा–भज सेवा याम– धातु से भजन बनता है। तो दोनों एक ही हुये। सेवा के द्वारा इधर शरीर शुद्ध होने लगेगा। उधर भजन से अंतःकरण शुद्ध होने लगेगा। खाने–पीने का ऐसा है, कि जो चीज़ तुम्हे अनपेक्ष मिल गई है, ठीक है, और अगर मांगोगे तो तामसी हो जायेगी। तो बगैर मांगे जो चीज़ मिल जाती है, चुपके से भगवान का भोग लगाओ, कोई जानने न पावे। यह सब पूजा–पाठ चोरी से

करना चाहिए। जब हमारी अच्छाई को कोई भी देखेगा, तो वह हमसे थोड़ा सा बँटा लेता है, यह नियम है।

तुम्हें मालूम है, वह कौन राजा था? त्रिशंकु। तो उसने अपने गुरू वशिष्ठ से कहा कि कोई उपाय किया जाये, हम सब खर्च-व्यवस्था करेंगे, मैं सदेह स्वर्ग जाना चाहता हूँ। तो वशिष्ठ ने समझाया, राजन! ऐसा नियम नहीं है- शरीर तो छोड़ना ही पड़ता है। स्वर्ग तो आकाश में गमन करने वाले लोगों के लिए ही है। वो जो वेट रहित हैं, जिनको गुरुत्वाकर्षण प्रभाव नहीं डाल पाता उनके लिए है। जो सार्वभौमिक होते हैं, पारदर्शी होते हैं। और शरीर के लिए तो मृत्युलोक है। यह शरीर वहाँ नहीं जा सकता। यह तो मात्र संकल्प है। और यह संकल्प पोषित इच्छा में परिणत हो कर शरीर बन गया, पदार्थ बन गया। यह वहाँ नहीं जा सकता। यह तो यहीं छोडना पड़ेगा। तो उसने कहा, नहीं-नहीं, कोई तो उपाय होगा? ऐसा तो हो नहीं सकता, कि किसी रोग का कोई इलाज न हो? हाँ यह बात अलग है, कि यह उपाय आपको न आता हो। उसके राज्य में और बड़े-बड़े ऋषि थे, शक्ति इत्यादि। उनसे भी कहा। उन्होंने भी इसी तरह बताया तो राजा नाराज हुआ कि तुम लोग पेट भरने के लिये साधु बने घूमते हो, तो शक्ति ऋषि ने उसे शाप दे दिया।

फिर त्रिशंकु राजा गया, विश्वामित्र के पास। वह ब्रह्मर्षि बनने के लिए तपस्या में लगे थे, और वशिष्ठ से विरोध था। तो उन्होंने कहा अरे वह वशिष्ठ क्या जानता है-चलो मैं तुम्हें सदेह स्वर्ग पंहुचाता हूँ। तो जैसे के तैसे, लगे-दोनों लोग। तो ये अपनी तपस्या के बल से बोल दिए- मैं इतने हजार वर्ष की तपस्या का फल देता हूँ, तुम जाओ स्वर्ग में। तो जोर लगाते-लगाते पहुँच गया। वहाँ स्वर्ग में हल्ला मच गया कि यह एक शरीरधारी आदमी यहाँ कैसे आ गया? तो गुरु वृहस्पति के पास गए, इंद्र वगैरह सब देवता यह समस्या बताये। वृहस्पति ने कहा, कि इसमें कौन झगड़े की बात है, उससे पूछ लो किकौन सी तपस्या या यज्ञ करके, पुण्य करके, स्वर्ग में आ सका है। जब वह बताएगा, अपने किए हुए पुण्य कर्मों को, तो जो सुनने वाले होंगे, उनके पास आ जाएंगे उसके पुण्य। इस तरह उसके पुण्य क्षीण हो जाएंगे। और जहाँ पुण्य क्षीण हुए, तो अपने आप स्वर्ग से उसका पतन हो जाएगा। गिर जाएगा। तो उससे झगड़ा करने की क्या जरुरत है ? जाकर देवताओं ने जब उससे पूछा तो फिर उसने विस्तार से बताया-मैंने यह यज्ञ किया, फिर यह किया यह किया, फिर वह किया, फिर ऐसा किया। सुनने वाले बहुत से लोग थे। कहते-कहते सारी पुण्य की कमाई खर्च हो गई। तो अपने आप नीचे आ गया। फिर चिल्लाया कि महाराज रोको-रोको मुझे बचाओ। तो कहते हैं, बीच में ही टांग दिया उसे अपने

तपोबल से विश्वामित्र ने। टंगा है वहीं। उसकी नाक बहती है, तो उससे कर्मनाशा नदी बन गई।

तो अब यह कहाँ का अर्थ, कहाँ की कहानी और आदमी कहाँ-कहाँ जोड़ कर क्या-क्या बना लेता है। कैसा विश्वामित्र का और वशिष्ठ का झगड़ा ? वशिष्ठ है भी कि नहीं? विश्वामित्र को लाया गया है, अपने थीसिस के हिसाब से, साधना के हिसाब से। वशिष्ठ जो सबसे श्रेष्ठ है- उसका नाम वशिष्ठ है। इस तरह से वशिष्ठ, ज्ञान है। यह गुरु है। जो साधना करता है, वही सूर्य कुल का राजा होता है। सूर्य कुल कहते हैं- श्वासा का कुल। जब श्वांसा के जरिए साधना करके इस संसार के पार जाता है, वह सूर्यवंशी कहा जाता है। निवृत्तिमार्ग की परंपरा ही सूर्यवंश है। तो सूर्यवंशी क्या कोई जात है, कास्ट है? अब तक जितने निवृत्ति मार्ग वाले महात्मा हुए हैं, उनकी परम्परा है, उनकी वंशावली है- सूर्यवंश। अब किसको कहाँ तक समझाया जाय? कहाँ की बात है-घटा लेते हैं कहाँ?

उसे सूर्यवंशी कहेंगे, कि जो श्वासा से साधना में पारंगत हो कर, इच्छाओं का दमन करके संसार से निवृत्त हो जाते हैं। वो सूर्यवंशी कहलाते हैं। उनकी परम्परा सूर्य-कुल है। जबसे इस दुनिया की सृष्टि हुई, इस श्वासा की साधना के द्वारा जिन्होंने भगवान को प्राप्त कर लिया है, उनकी निवृत्ति हुई है-वे निवृत्ति मार्ग वाले हैं- ऐसे कितने लोग हुए। उनका कितना परिवार है, उनका कितना कुल है-वह परम्परा। वह अलौकिक परम्परा। उसमें कितने साधक हुए-यह सूर्यवंश है। न कि जात वाला, न कि समाज वाला। ऐसा नहीं होता यह तो गलत अर्थ है। सही अर्थ लेना पड़ेगा।

एक होता है सूर्यवंश-निवृत्ति मार्ग वाले। एक होता है चन्द्रवंश प्रवृत्ति मार्ग वाले, ये दो होते हैं-एक होता है घूम्र यान और एक होता है- अर्चि यान। अर्चि यान से जाने वाले की निवृत्ति होती है, और घूम्र यान वाले, आने-जाने वाले होते हैं। फिर मरेगा, फिर जन्म लेगा फिर अच्छा होगा, फिर बुरा होगा। तो दो यान हैं, दो मार्ग हैं, दो तरीके हैं-एक निवृत्ति और एक प्रवृत्ति। निवृत्ति मार्ग वाला सूर्यवंशी कहलाता है, और प्रवृत्ति वाला चन्द्र वंशी कहलाता है। ये दो रास्ते हैं। इसे गीता उपनिषद में देख सकते हो। तो जिनको ईश्वर को पाना है, वो सूर्यवंशी होता है। जिनको (सद्गुरु की शरण में) एडमीशन मिल गया-भर्ती होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। और वह उस पद्धति से फिर चले, इच्छाओं का दमन करके। साधना पूरी करके निवृत्ति को प्राप्त करे। ऐसे महापुरुषों की जो परंपरा चली आ रही है, वह सूर्य कुल है, उस कुल के

गुरु वशिष्ठ हैं। और वशिष्ठ है ज्ञान। बिना ज्ञान के निवृत्ति मार्ग की साधना नहीं होती। परमात्मा की सही जानकारी होना चाहिए।

प्रकृति पार प्रभु सब उर वासी। ब्रह्म निरीह विरज अविनाशी।।

वह प्रकृति से परे है। सबसे परे है, सबके हृदय में निवास करता है, निर्मल से भी वह निर्मल है। एकरस है, व्यापक है, शुद्ध है, बुद्ध है, अजन्मा है, अविनाशी है-ऐसा जो स्वरूप है, उससे हमें मिलना है। जिस रोज साधक के अन्दर ऐसी रुचि आ जायगी, लगन जाग जायगी, लव लग जायगी। उधर से रावण की ठोकर लगी, तो भगवान की शरण में आने का संयोग बन जायेगा। जैसे विभीषण का बन गया। विभीषण हमारे तुम्हारे सबके अन्दर जीवात्मा के रूप में बैठा है। रावण भी यहीं है, मोह के रूप में। विभीषण ने रावण को विनयपूर्वक समझाया कि इस सीता रूपी शक्ति को, उसी को दे दो, जिसकी यह है। यह तुम्हारी नहीं है। अनधिकार चेष्टा करना ठीक नहीं है। यह उसकी शक्ति है, जो सर्वेश्वर है। तो इस तरह से यह जीवात्मा ही सब बताता है। उसी को यह ज्ञान है, कि संसार के पदार्थ, धन वैभव, ऐश्वर्य सब हमारे नहीं हैं, परमात्मा के हैं। इस दुनिया का वही मालिक है। हम अगर इसके पदार्थों को अपना मानकर भोगते हैं, तो रावण का ही काम करते हैं। मोह के कारण ही मेरा है-मेरा है का भाव आता है। भगवान की सम्पत्ति का उपभोग, बिना उसके आदेश के करना, चोरी करने के समान है, डाका डालना है। बताइये, सब खाते हैं, पीते हैं, खेती, व्यापार करके, वैज्ञानिक तरीकों से धरती, आकाश, हवा, पानी सबका उपभोग करते जा रहे हैं। क्या कभी पूछा किसी ने भगवान से ? क्या किसी ने अप्लीकेशन दी भगवान के यहाँ, कि हम आपकी यह अमुक वस्तु लेना चाहते हैं। सब मेरा है, मानकर करते जा रहे हैं। यही तो कर रहा था, रावण। लंका का ऐश्वर्य भोग रहा था, अपना मानकर। ईश्वर की मान्यता उसके यहाँ थी नहीं। इसी प्रकार से अगर हम भी मेरा है-मेरा है, यह सब मैं कर रहा हूँ, मैं ऐसा विद्वान हूँ, मेरा ऐसा प्रभाव है यही सब करते रहते हैं। भगवान को ताक में रखे बैठे हैं। मेरा-मेरा में ऐंठे हैं, तो समझना चाहिए हमारे अन्दर रावण का निवास हो गया। ऐसा यदि हम करते हैं- तो सिद्धान्त विरुद्ध हो गया। फिर देखते हो पैसे वालों को, कभी रेड पड़ जाती है, आयकर वाले आ जाएंगे, चोर-डाकू आ जाएंगे भूख गायब हो जायगी, मुकदमा चल जायगा, नींद खराब हो जायगी, लड़का-लड़की बिगड़ जाएंगे, पचास बीमारी आती है। पैसे वाले परेशान घूमते हैं। पैसे वालों से पूछो- इनकी नानी मरी हुई है। ऐसा क्यों है ? कि बिना ईश्वर की इजाजत लिए हुए, बगैर उसकी परमीशन के बगैर काटखता किए, उपभोग कर रहे हैं।

हमारे ऋषियों मुनियों ने इस सिद्धान्त को समझा था। इसलिए जन्मते ही विरक्ति भाव, उनमें जाग्रत रहता था, और वह भाग जाते थे। घर से निकल जाते थे। भजन भाव द्वारा जब भगवान को प्रत्यक्ष कर लेते थे, तबफिर उसी ईश्वर के आदेश से संसार के कार्य भी करते थे। गृहस्थी भी करते थे। गुरुकुल चलाते थे। और भी सब काम करते थे। लेकिन ईश्वर के आदेश से, उसी का मानकर करते थे। उसी का दिया उपभोग करते थे। जो जानते हैं, वह आज भी ऐसा करते हैं। गर्ग, गौतम, वशिष्ठ, सांडिल्य, अत्रि आदि सब गृहस्थ ऋषि थे। कुछ विरक्त रहते थे इनमें नारद, सनकादिक, शुकदेव आदि के नाम हम तुम सब जानते हैं। शादी करते हुए उन्हें कोई दोष आज तक नहीं लगा। वही क्षमता वीटो, विलपावर, उनमें बराबर बनी रही। आजकल वैज्ञानिक लोग अरबों-खरबों रुपए लगाकर, एटम बम बनाते हैं। उसके रखरखाव में अरबों खर्च होता है। फिर उसके प्रयोग के लिए वायुयान वगैरह में भी खर्च होता है। और उन ऋषियों ने ध्याता, ध्यान, ध्येय के रूप में, बहुत पहले से इन न्यूट्रान, प्रोट्रान और इलेक्ट्रान की एटामिक इनर्जी से भी मालीक्यूल आत्मिक शक्ति का अनुसंधान कर लिया था। वाणी निकली, किविध्वंश हुआ। वाणी निकली, और काम हुआ। अच्छा काम हो सकता है, बुरा काम हो सकता है। आज हम उन्हीं ऋषियों की संताने हैं। दीन-हीन दरिद्र की नाईं भरभटा रहे हैं। थोड़ा खाने-पीने को घर में है, तो अकड़े फिरते हैं। अन्दर से खोखले हैं। क्यों नहीं करते हम, अपने पूर्वजों की विद्या का अनुपालन? क्योंकि -

'सद्ग्रंथ पर्वत कंदरन्हि महुं जाय तेहि अवसर दुरे।'

सभी पर काम हावी है। कैसे करें? सही बात बताने और सुनने समझने वाले भी जल्दी नहीं मिलते- करने वाला तो कोई-कोई ही है। हम कहते हैं कि लोग रोज रामायण पढ़ते हैं। फिर भी नहीं समझते। क्योंकि तुलसीदास की जो समझ, इस मानस में निहित है- समाज में रह नहीं गयी। गिरि-कंदराओं में छिप गई है। हाँ थोड़ा गहराई में जाना पड़ेगा, इसी मानस में- खोजबीन करें, तो मिलेगी। लोग तो कहानी पढ़कर मनोरंजन करते हैं। एक सोने की नगरी लंका थी-रावण वहाँ का राजा था। बड़ा विद्वान था, दस सिर थे उसके। कुम्भकरण उसका भाई था, मंदोदरी स्त्री थी, यह लड़का था-ऐसा करता था, वैसा करता था। बस ऊपर-ऊपर रह गए। और वह समझ छिपी है, गहराई में। बताने वाले बता पाते नहीं। सुनने वाले भी सुनते जा रहे हैं। न कोई तर्क करता है। रावण के दस सिर थे। तर्क करना चाहिए। न उसके बाप दादा के दस सिर थे। न फिर लड़कों बच्चों के हुए। क्या आज तक कोई ऐसा आदमी फिर से हुआ? वंशानुक्रम में तो होना चाहिए। बस रावण हुआ।

तो सच्चाई यह है, कि यह मानस हमारे खुद के अन्तःकरण का नाटकीय रूपांतरण है। देखिए कितना अच्छा कम्पोजीशन किया है गोस्वामी जी ने। दसों इंद्रियाँ जो विषय में लगी हैं, यही रावण के दस सिर हैं। दसों इंन्द्रियाँ विषयानन्द में लिप्त हैं इसलिए इसे दशानन कहते हैं। मेरा-मेरा का जो भाव है मोह, यही रावण है। जब हम मेरा है-मेरा है की भावना से संसार के पदार्थों का भोग करने में प्रवृत्त हो जाते हैं, तो हमारा मानस (अन्तःकरण) रावण का घर बन जाता है। भोग में बाधा आती है, तो क्रोध कुंभकर्ण भी पैदा हो गया अंदर। लोभ, नारान्तक पैदा हो गया, काम मेघनाद हो गया, इच्छा अक्षय कुमार, मोहग्रस्त बुद्धि मंदोदरी की, ये सब संताने हैं। ईर्ष्या, द्वैष, बैर, विरोध ये सब त्रिशिरा खर, दूषण हमारे अन्दर अपनी-अपनी छावनी बना लेते हैं। फिर इनका अनन्त विस्तार हो जाता है। मन रूपी मय दानव द्वारा निर्मित आसक्ति रूपी लंका, इस रावण की राजधानी बन जाती है-मोह हमें आच्छादित कर लेता है। हमारी आत्मा ही विभीषण है। इन विकारों के बीच फंसा पड़ा है। पद दलित हो रहा है।

गोस्वामी जी ने विनय पत्रिका में इसको खोलकर लिख दिया है-

'वपुष ब्रह्माण्ड सुप्रवृत्ति लंका दुर्ग,
रचित मन मय दनुज रूपधारी।
विविध कोशौध, अतिरूचिर मन्दिर निकर,
सत्व गुण प्रमुख त्रैकट्ककारी।।
कुणप अभिमान सागर भयंकर घोर,
विपुल अवगाह दुस्तर अपारं।
नक्र नागादि संकुल मनोरथ सकल,
संग संकल्प वीची विकारं।।
मोह दशमौलि तद्भ्रात अहंकार,
पाकारिजित काम विश्राम हारी।
लोभ अतिकाय, मत्सर महोदर दुष्ट,
क्रोध पापिष्ठ विवुधान्तकारी ।।

कृ कृ कृ

जीव भवदंघ्रि सेवक विभीषण बसत,
मध्य दुष्टाटवी ग्रसित चिन्ता।

इत्यादि।

विनय का यह पद, गोस्वामी तुलसीदास के आध्यात्मिक अनुसंधान का रहस्य खोल देता है। रामायण पढ़ने वालों को इस रहस्य से परिचित ज़रूर होना चाहिए।

इस तरह से काम, क्रोध, मोह, मद, मत्सर, ईर्ष्या, द्वैष, ये सब बड़े-बड़े विकार हमारे तुम्हारे सबके मन में भरे रहते हैं। इन विकारों से ग्रस्त रहता है जीव। यह जीवात्मा ही विभीषण है। यह आत्मा, परमात्मा का अंश है-उसी ओर इसकी प्रवृत्ति रहती है। यह उसी का स्वरूप है। निर्लेप है। आकाश से भी सूक्ष्म और व्यापक है। आत्मा पारदर्शी होती है, यह कोई पदार्थ नहीं है। जैसे यह आकाश है। आकाश से भी सूक्ष्म होता है महत्तत्व। महत्तत्व से भी सूक्ष्म प्रकृति और प्रकृति से भी निर्मल और सूक्ष्म आत्मा होती है। उसको इस तरह समझो। यह आग से नहीं जलेगा। पानी से गीला भी नहीं होगा। इस तरह से आत्मा निर्लेप है, निरवयव है, निराकार है, एकरस है। इसका प्रतिरूप विभीषण को बताया है, गोस्वामी जी ने। मय दानव ने लंका को बनाया है। मैं कहते हैं अहंकार को। मैं-मेरा की इस माया से घिरा, आसक्ति रूपी लंका में यह जीवात्मा विभीषण है। इसे हर साधक को अपने में ठीक से बैठा लेना है, और विभीषण की मदद करना है। जीवात्मा हमारा स्वरूप है। हमेशा अपने उसी सत्य स्वरूप की ओर जाना चाहता है। हमारे शरीर के अवयवों को ताकत देता है, सबको प्यार देता है, नीति बताता है और शान्ति के रास्ते पर चलना चाहता है। लेकिन इसी लंका में दुष्टों से घिरा पड़ा है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, आदि विकार उसे उधर जाने नहीं देते। इन विकारों के बीच अशान्ति रहती है क्योंकि ये क्षर हैं। क्षण-क्षण में उपजते-विनशते रहते हैं, असत्य हैं। शांति तो वहाँ है जहाँ स्थायित्व है। जो सदा एकरस है, सत्य है, वह आत्मा का स्वरूप है। वह स्थिति बनती नहीं, जब तक हम असत्य को पकड़े रहेंगे, विकारों से भरे रहेंगे, माया में पड़े रहेंगे। इसे हटाना होगा। विभीषण चला गया, तब भगवान मिल गए, राजतिलक हो गया। लेकिन वह जीवन भर लगा रहा, प्रयास करता रहा, तब सफल हुआ। इसका नामहै साधना। तो हम ईश्वर का भजन करने वालों से कहना चाहते हैं, कि तुलसीदास संत थे, महापुरुष थे। भजन साधन सम्पन्न महात्मा थे। उनकी बातों को हमें गम्भीरता से लेना चाहिए। अपने अर्थ में लेना चाहिए आत्मकल्याण के लिए। ईश्वर के अर्थ में लेना चाहिए। संसार के अर्थ में लेंगे, तो अभी रामायण पढ़ने पर लंका अलग, अयोध्या अलग खड़ी हो जायगी। कल्पना में आ जायगी। हमारा मन बाहर आ गया। क्या लाभ मिला ? इसलिए इन सारे प्रसंगों को अपने अन्तःकरण में उतारते चलो।

उनको सही ढंग से नट बोल्ट से कसते चलो–एडजस्टिंग करते चलो। तब रामायण पढ़ने का सही लाभ मिलेगा।

हरिः